कितना सच ?

कितना झूठ !

★ ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी भी परिवार में बालक के जन्मते ही छूत (सूतक) वास कर जाती है। पूजा-पाठ बन्द हो जाते हैं। नाल काटने के लिए भी हरिजन जाति की दायी बुलाई जाती है ! छठी पर्यन्त जच्चा-बच्चा उसी दाई के हाथ का छुआ खाते हैं ! क्यों···?

★ क्या वर्ण व्यवस्था जन्मना है अथवा कर्मणा ?······

★ भारत के सन्त तथा आदि ग्रन्थों में इसका स्वरूप क्या है ?

★ राष्ट्रीय नेताओं की छुआ-छूत की आड़ में पनपती गन्दी-घिनौनी राजनीति और भेद-भाव की व्यवस्थायें बनाकर, आपस में लड़ाने, घृणा, वैमनस्य और संदेह उत्पन्न कर वोट-बैंक बनाने वाली रणनीति······

★ क्या इस देश के नेता, राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री भी ईमानदारी से छुआ-छूत, जात-पात मिटाने के पक्षधर रहे हैं?

अध्यक्ष

स्वामी सनातन श्री

व्यापक अध्यात्मिक शिक्षा प्रसार में बहुमूल्य योगदान करें।

(दक्षिणा २ रुपया मात्र)
पुनर्प्रकाशन हेतु

श्री सनातन आश्रम, कुर्सी रोड, लखनऊ-७ फोन : ७३७६७

छुआ-छूत

(कितना धर्म सम्मत -★- कितना भ्रम और झूठ)

परम योगी–श्री स्वामी सनातन श्री

यदि कोई सन्यासी आपसे कहे, कि सनातन धर्म में छूआछूत का कोई स्थान नही है। आप चौंक उठेगें। आपको अनायास अपने कानों पर विश्वास भी नहीं होगा। जिस छुआछूत को समाज का एक वर्ग व्यापक रुप से धर्म संमत् मानता है, तथा जिसको हथियार और हथकण्डा बनाकर नेताई तंत्र भेदभाव की राजनीति करता है, भला वह सनातन धर्म ने नहीं दिया। ऐसा विश्वास कौन करेगा ? आज छूआछूत एक राजनैतिक स्लोगन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक घुटन तथा अवसरवादियों का खुला चारागाह बना हुआ है। भला कोई धार्मिक आधार भी नहीं होगा, ऐसा कौन विश्वास करेगा ?

परन्तु ये नितान्त सत्य है कि भारत के सन्त ने तथा आदिकालीन धर्म ग्रन्थों ने कभी भी छूआछूत को मान्यता नहीं दी है। छूत का सनातन धर्म में कोई स्थान नहीं है।

जिस देश का नाम आज "भारतवर्ष" है, इस देश का पूर्व नाम भी "भरत–खण्ड" रहा है। तथा "एशिया" महाद्वीप का नाम "जम्बूद्वीप" आया है। इन्हीं शब्दों का प्रयोग आज भी हम पुजा के पूर्व, लिये गये संकल्प में करते हैं।

ऋग्वेद में भारत शब्द का प्रयोग सबक भरण-पोषण करने वाला परम्-पिता परमेश्वर के रुप में आया है। भरत अर्थात् सचराचर का भरण-पोषण करने वाला। क्योंकि सबका एक ही पिता है "भरत"। इसीलिए उसी के पुत्र होने के कारण हम सब "भारत" कहलाए। "भारत शब्द का अर्थ ईश्वर का, अर्थात् "भरत" का पुत्र, मसीहा, अवतार। "भारत" के सन्त ने इस शब्द का प्रयोग करने का अधिकार सभी मनुष्यों को दिया। प्रत्येक शरीर को, ईश्वर ही आत्मा होकर बना रहा है। इसलिए हम सबका एक पिता है "भरत"। तथा हम सब उसके ही पुत्र हैं "भारत"।

भारत के सन्त ने हम सब को भारत कहकर अवतार कहा हैं, उसने मनुष्य मात्र मे भेद नहीं किया है। यहाँ तक कि वर्ण-व्यवस्था को भी सनातन धर्म ग्रन्थों ने जन्मना नहीं माना है। स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण इसी व्यवस्था का प्रतिपादन कहते हैं।

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारव्ययम् ॥"

हे अर्जुन ! चारों वर्णों की सृष्टि मेरे द्वारा गुण और कर्म के विभाग से हुई है। यहाँ भी भगवान वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म विभाग सा ही मानते हैं, जन्मना नहीं स्वीकारते। आगे चलकर गीता में भगवान पुनः इसी विषय को स्पष्ट करते हैं:—

"विद्याविनवसंपन्ने ब्रह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥"

हे अर्जुन ! विनय युक्त ब्राह्मण में, चाण्डाल में, गौ और हाथी में जो भेद नहीं करता है वही ज्ञानी है। धर्म को जानने वाला है।

आपके मन में वर्ण-व्यवस्था को जानने की जिज्ञासा का उठना स्वाभाविक है। गुण-कर्म विभाग से वर्ण-व्यवस्था क्या है ? इसका उत्तर हमें अन्यत्र भी मिलता है:-

"जन्मना जायते शद्रा संस्कारात्, द्विज उच्चते,
वेद पाठे भवेत् विप्रा ब्रह्म जानाति ब्राह्मणा।"

हर व्यक्ति जन्म से शूद्र है. संस्कार के द्वारा ही वह द्विज होता है। ऐसा उपरोक्त श्लोक में कहा गया है। हम यदि धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं में भी देखें तो हमें इसी परम्परा का निर्वाह सर्वत्र मिलता है।

ब्राह्मण क्षत्रिय अथवा वैश्य सभी परिवारों में जब कोई बालक जन्म लेता है। १२ दिन तक "सूतक" अर्थात् छूत वास करती है। "दाई" भी हरिजन जाति की ही बुलाई जाती है। छठी पर्यन्त जच्चा और बच्चा को उसी दाई के हाथ का छुआ ही खिलाया जाता है। १२ दिन तक देवताओं के भी मन्दिर बन्द कर दिये जाते हैं। पूजा-पाठ भी बन्द कर दिये जाते हैं। ऐसा करने का कारण है, कि जन्मता वालक सभी परिवारों में शूद्र माना जाता है। जब तक बालक का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं, होता उसे ब्राह्मण के घर में भी शूद्र ही माना जाता है।

यज्ञोपवीत संस्कार से पूर्व बालक को वेद-पाठ का अधिकार नहीं होता । वह मूर्ति का स्पर्श भी नहीं कर सकता, मूर्तियों को स्नान भी नहीं करवा सकता । वह पूरे कपड़े पहन कर भी कच्चा अन्न ग्रहण कर सकता है । ब्रह्मणोचित सभी नियम भी उस पर लागू नहीं होते । वह शूद्र ही माना जाता है । इस प्रकार जन्म से प्रत्येक बालक को शूद्र मानने की परम्परा हमें धर्म द्वारा दी हुई व्यवस्थाओं में भी मिलती है । इसका चलन आज भी सारे भारत में व्यापक रूप से हो रहा है ।

मैंने पूछा वेद से– कि क्या वह बालक शूद्र है ? वेद ने उत्तर दिया वह बालक शूद्र नहीं है । कोई भी मनुष्य शूद्र नहीं है । वे तो परमेश्वर की बनाई हुई कृति हैं । तब फिर बालक को हमने शूद्र क्यों कहा ? यदि बालक शूद्र नहीं तो फिर शूद्र क्या है ? धर्म ने इसका स्पष्ट उत्तर दिया । "अज्ञान" । अर्थात् अज्ञान से लिप्त होने के कारण ही वह बालक शूद्र कहलाता है । जन्मता बालक अज्ञानी होने के कारण सर्वत्र शूद्र माना जाता है । इसी बालक की अगली अवस्था वैश्य होगी । जब ये बालक गुरुकुल में ज्ञानार्जन करने हेतु जायेगा तब इसकी संज्ञा वैश्य होगी । जन्म काल में अज्ञान में लिप्त था । तो शूद्र कहलाया । गुरुकुल में यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त ज्ञानार्जन हेतु आया तो वैश्य हो गया । ज्ञान का अर्जन ही तो सत्य रूप में धनार्जन है । ज्ञान के द्वारा ही अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसीलिए ज्ञानार्जन करता बालक वैश्य कहलाता है ।

गुरुकुल से उपराम हुआ बालक जब विवाह हेतु विवाह-मण्डप में आया, छत्र को धारण किया तो क्षत्रिय हो गया । गृहस्थ धर्म ही तो क्षत्रिय धर्म है । गृहस्थ धर्म ही तो जीवन का संग्राम है । गृहस्थी से जूझता बालक ही तो क्षत्रिय है । मायाओं के महासमर का महारथी है । यूँ जन्म काल से शूद्र, गुरुकुल में वैश्य बना, गृहस्थ हुआ तो क्षत्रिय कहलाया ।

गृहस्थ से ऊपर उठ चला वह । आत्मवत जीने की इच्छा उसे वानाप्रस्थ धर्म में ले आयी । सब में एक ब्रह्म है । मेरा पिता परमेश्वर घट-घट वासी आत्मा होकर सम्पूर्ण सचराचर की सेवा में लगा है । आत्मा होकर अभेदभाव से हर जीव की जूठन को रक्त में बदल रहा है । इच्छा रहित होकर आत्मा अर्थात् ब्रह्म सचराचर की सेवा में लगा हुआ है । मैं भी अपने पिता ब्रह्म की राह चला । सचराचर ही मेरा परिवार है, "वसुधैव कुटुम्बकम्" आत्मवत जीना है मुझको । आत्म यज्ञार्थ, आत्म सेवार्थ, आत्मवत संसार को

जानते हुए आत्मा की भाँति ही समर्पित जीवन होगा मेरा। ब्रह्म ही मेरी राह है। ब्राह्मण हूँ मैं। इस प्रकार वानाप्रस्थ धर्म में आते ही वह क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया।

इस प्रकार गुण-कर्म विभाग की व्यवस्था हमें सद्ग्रन्थों में भी मिलती है। तथा मान्य परम्पराओं में भी इसका ही व्यापक चलन देखने में आता है।

इसी धार्मिक मान्यता का स्पष्ट प्रमाण हमें महाभारत में भी मिलता है।

पाण्डव वनवासी का जीवन जी रहे हैं। कौरवों के षडयन्त्र के कारण उन्हें १२ वर्ष तक वानाप्रस्थ तथा एक वर्ष का अज्ञातवास बिताना है।

ऋषि की अरणी को लेकर एक मृग भाग गया था। युधिष्ठिर ने भीम से अरणी लौटा लाने के लिए कहा। भीम हरिण का पीछा करते हुए चले गये। बहुत समय बीत चुका है। लेकिन, अभी तक वह लौटे नहीं हैं। युधिष्ठिर की व्याकुलता बढ़ती ही जाती है और वे भीम को खोजने चल देते हैं। सघन वनों को पार करते हुए पद-चिन्हों को देखते हुए, युधिष्ठिर भीम को खोजते हुए, निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे हैं। अचानक उनकी दृष्टि एक बहुत बड़े अजगर पर पड़ती है। जिसने भीम को बुरी तरह से जकड़ रखा है। भीम निढाल, असहाय अजगर के द्वारा जकड़े हुए हैं। युधिष्ठिर इस दृश्य को देखकर चौंक उठते हैं। वे मन ही मन जान गये हैं, कि ये साधारण अजगर नहीं है। क्योंकि भीम के शरीर में एक हजार हाथियों का बल है। कोई साधारण जीव भीम को परास्त कर ही नहीं सकता। अवश्य ही ये अजगर कोई यक्ष, देव अथवा किन्नर होगा। उससे प्रार्थना करते हैं।

"हे देव ! आप कौन हैं ? कृपया मेरे भाई भीम को छोड़ दें। इसके बदले में आप जो इच्छा करें मैं वही भोजन सामग्री आप के लिए उपलब्ध करूँ"।

अजगर ने उत्तर दिया, "हे धर्म पुत्र ! युधिष्ठिर ! मैं तुम्हारा पूर्वज महाराज नहुष हूँ। ऋषि द्वारा अभिशप्त होकर इस अजगर योनि में आ गया हूँ। ये मेरा दुर्भाग्य है, कि अभिशप्त होने के कारण आज मुझे अपने ही प्रपौत्र को खाना पड़ेगा। मेरे द्वारा भीम का मरण तुम निश्चित जानो।"

"हे पुनीत पितामह ! आज भीम पर दया करें। कृपा करके उसे छोड़ दें, अन्यथा आप हम पाँचों भाइयों का भी भक्षण करें। भीम के बिना हम सबका जीवन व्यर्थ है। देव ! कोई ऐसा उपाय ही बताएं जिससे कि भीम की रक्षा हो सके ?"

"हे युधिष्ठिर ! मेरे मन में तीन संदेह बाकी हैं। यदि तुम उन तीनों संदेहों का निवारण कर दो तो मेरा शाप मुक्त हो जायेगा। मैं अजगर योनि का परित्याग कर, मोक्ष को चला जाऊँगा। उसी अवस्था में भीम की जीवन रक्षा हो सकती है।"

"हे देव! आप कृपा पूर्वक अपने संदेहों को स्पष्ट करें। मैं उनके निवारण का भरसक प्रयास करूँगा।" युधिष्ठिर ने विनय पूर्वक कहा।

मेरा पहला प्रश्न है :– "क्या वर्ण-व्यवस्था जन्मना है ?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया :– "वर्ण-व्यवस्था कर्मणा है, गुण-कर्म के विभाग से है। ये जन्मना कदापि नहीं हो सकती।" धर्म पुत्र युधिष्ठिर! अर्थात् स्वयं धर्म ने उत्तर दिया।

"क्या शूद्र यज्ञोपवीत का अधिकारी है तथा वह भी ब्राह्मण हो सकता है ?" नहुष का दूसरा प्रश्न था।

"हाँ शूद्र भी १२ वर्ष तक सरस्वती नदी के किनारे तप करता, मनसा, वाचा, कर्मणा, शुद्ध वृत्तियों का परित्याग करता, यज्ञ की ज्वालाओं से पवित्र होता ब्राह्मणोचित कर्म करने का अधिकारी है तथा यज्ञोपवीत का भी उसे अधिकार है। वह ब्राह्मण ही नहीं, सन्यासी भी हो सकता है। ईश्वर की राह में भेद नहीं होते।"

"क्या ब्राह्मण शूद्र हो सकता है ?" नहुष का तीसरा प्रश्न था, जिसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा– "ब्राह्मण वृत्तियों से त्यक्त हुआ ब्राह्मण तत्क्षण शूद्र हो जाता है।"

"ब्राह्मण वृत्तियाँ क्या हैं ?" नहुष ने पुनः जिज्ञासा की।

"सब में एक ब्रह्म को देखना। आत्मा की भाँति ही सचराचर में अभेद तत्व को सर्वोपरि मानकर सब में आत्मवत व्यवहार करना। आत्मा की भाँति ही अपरिग्रही होना। आत्म यज्ञार्थ, आत्म सेवार्थ, आत्मवत जीवन तथा सम्पूर्ण सचराचर को आत्ममय जानना।" युधिष्ठिर का सहज उत्तर था।

युधिष्ठिर के द्वारा शंकाओं का समाधान होते ही श्राप मुक्त हो गया नहुष। अजगर योनि का परित्याग कर ज्योतिमय स्वरूप को धारण करता अनन्त को चला गया।

इसी प्रकार के प्रमाण हमें सभी धर्मग्रन्थों में सर्वत्र मिलते हैं। जिससे स्पष्ट है कि छुआछूत अथवा भेद-भाव धर्म सम्मत् कदापि नहीं है। महाभारत में ही ऋषि उतंग की

कथा आती है जिसने भेदभाव के कारण अमृत गवां दिया था । इसी प्रकार की कथायें सारे धर्मग्रन्थों में पढ़ने में आती हैं । भगवान श्री रामचन्द्र का शबरी के जूठे बेर खाना । निषाद गुह का ऋषि वशिष्ट के आश्रम में राम का सहपाठी और अन्तरंग सखा होना पुनः इस बात को स्पष्ट करता है कि शिक्षा के अधिकार से भी किसी को वंचित नही किया गया था । तथा भेदभाव की कोई व्यवस्था समाज में नहीं थी ।

बाल्मीकि रामायण में शम्बूक-वध की कथा को राजनैतिक बाजारू तंत्र ने बहुत उछला है । उस कथा का भी, जो कि एक क्षेपक कथा है, मात्र उद्देश्य इतना था कि जो कोई भी मलेक्ष अर्थात् शूद्र अर्थात् दूसरों का अहित चाहने वाले तंत्रीय साधना में जाते हैं । जो दूसरों का अहित करने के लिए तामसी तांत्रिक साधना में जाते हैं, ईश्वर ऐसे तामसी लोगों को स्वयं मिटा देता है । शम्बूक कथा में कोई शूद्र नहीं है क्योंकि धर्म में जन्मना कोई व्यवस्था ही नहीं है । दूसरे व्यक्ति से बदला लेने की भावनाओं से तामसी साधना को करने के कारण ही वह शूद्र कहलाया । शूद्र वृत्ति से युक्त होने के कारण ही व्यक्ति शूद्र होता है शम्बूक दूसरों के अहित की साधना कर रहा है । ये वृत्ति उसे शूद्र बनाती है तथा दूसरे के अहित की कामना करने के कारण ईश्वर उसका ही अहित करते हैं । इसी सत्य को प्रकट करने की एक क्षेपक कथा शम्बूक की कहानी है । ये कथा महर्षि बाल्मीकि ने नहीं दी है, वरन् क्षेपक कथा के रुप में कालान्तर में बालमीकि रामायण के अन्त में जुड़ गयी है ।

तुलसीदास कृत रामचरित मानस में एक चौपाई को लेकर ही नेताई ठग तन्त्र ने धर्म पर कीचड़ उछालने के लिए तथा भरमाने के बहुत से नाटक अतीत में किये हैं । लखनऊ की विधान सभा में मानस के पन्नों को फाड़कर अपने पैरों से सदस्यों ने कुचला है । जबकि तुलसी के राम इस सारी गन्दगी से बहुत ऊपर रहे हैं । मैं इस विषय को लेकर भी स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि :–

ढोल गवांर शूद्र पशु नारी । ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

ये शब्द सागर ने स्तुति में राम से कहे हैं । सागर श्रीराम का अवरोध बना हुआ खलनायक का अभिनय कर रहा है । ये सवविदित, सर्वमान्य सत्य है कि सभी कथाओं में सिद्धान्तों का प्रतिपादन नायक से होता है, तथा खलनायक से समाज में व्याप्त खलवाद

को तथा विसंगतियों को उभारा जाता है। जिनका निराकरण नायक के द्वारा होता है तथा सिद्धान्तो का प्रतिपादन होता है।

मानस के नायक श्रीराम हैं और क्षणिक खलनायक सागर बना हुआ है। खलनायक सागर ही इस चौपाई को सुना रहा है। जिसका निराकरण नायक श्री राम शबरी के जूठे बेर, सती अनुसुइया का उज्जवल स्वरुप, निषाद और असुर विभीषण को अपने समान अधिकार देकर कर रहे हैं।

लेकिन जिन्होंने सिर्फ दूषण और गन्दगी ही समाज को देनी है। जिन्होंने भोले लोगों को फँसाकर अपनी गद्दियाँ और दूकाने बनानी हैं; जिन्हें मानवता को बेचना है और लोगों के भोलेपन का शोषण करके अपनी लंकायें बनानी हैं, वे लोग अमृतमय कथाओं को भी विषावत क्यों न करेंगे?

संस्कृत में "श्वपच" शब्द का प्रयोग चाण्डाल के लिए प्रयुक्त होता है। जिसका अर्थ है मुर्दे खाने वाला। महाभारत में श्वपच नामक ऋषि भी आयें हैं, जिनको महाभारत के नायक भगवान श्री कृष्ण ने अपने से ऊपर पूज्य तथा वन्दनीय कहा है। होली का त्यौहार भी इसका जीवन्त प्रमाण है। जो श्रीमद्भगवद् की देन है। वहाँ भेदभाव करने वाला हिरण्युकशिपु एक पतित राक्षस के रूप में दिखाया गया है। उसका बेटा "प्रहलाद" जो अभेद भाव से सबके गले मिलता है, ईश्वर का प्यारा दिखाया गया है। होली आज भी उसी परम्परा का त्यौहार है, कि जहाँ न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है, न कोई अमीर है। और न कोई गरीब है, सब पर रंग डालों सब को गले से लगा लो।

यदि धर्म में छूत-पात और भेद-भाव की भावना होती तो क्या ये त्योहार होते, सद्-ग्रन्थों में ये कथायें होती?

सनातन धर्म एक सागर है जहाँ नाना सम्प्रदायों की नदियाँ आकर उतरती है। शंकराचार्य सम्प्रदाय, रामानुजाचार्य सम्प्रदाय, वल्लभाचार्य सम्प्रदाय, शैव सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय, नागा सम्प्रदाय, पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय, प्रणामी मार्ग सम्प्रदाय, आर्य-समाज सम्प्रदाय, आदि-आदि असंख्यों सम्प्रदाय, भारत में अपने अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए, सनातन सागर में समाये हुए हैं।

लगभग सभी सम्प्रदायों में सनातन धर्म में रहते हुए भी अलग-अलग धाराणाएं तथा मान्यताएं रही हैं। कुछ सम्प्रदायों की देन जन्मना वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत और भेदभाव

रहा है तथा आज भी है। एक साम्प्रदायिक मान्यता के लिए सारे धर्म को दोषी करार देना एक बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण, भ्रान्तिपूर्ण और लज्जाजनक बात है।

सूरज की किरणें एक खिले हुए गुलाब पर भी पड़ती हैं, और एक सड़ी हुई गन्दी नाली में भी। चूंकि किरणें गन्दी नाली में चली गयी हैं इसलिए सूरज गन्दा है ऐसा तो कोई वज्र मूर्ख ही कह सकता है अथवा कोई निकृष्ठतम कोटि का मक्कार कह सकता है। एक सहज इमानदार व्यक्ति किरणों के कारण सूरज को गन्दा तो कदापि नहीं कहेगा।

जिन सम्प्रदायों ने छुआछूत और भेदभाव की गन्दगी को दिया है, व्यापक रूप से वे सम्प्रदाय शंकराचार्य सम्प्रदाय तथा आर्यसमाज रहे हैं। हरिजन विरोधी विश्व की सबसे गन्दी पुस्तक महर्षि दयानन्द द्वारा रचित "सत्यार्थ प्रकाश" है, जिसमें शूद्र के हाथ का भोजन खाना मां, बहन, तथा बहू, के साथ व्यभिचार करने जैसा है और मल अर्थात् विष्ठा खाने के समान है। उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :–

सत्यार्थ प्रकाश दशम सम्मुल्लासः प्रश्न संख्या–३४

प्रश्न :– कहो जी मनुष्य मात्र के हाथ की हुई रसोई, उस अन्न के खाने में क्या दोष है? क्योंकि ब्राह्मण से लेके चांडाल पर्यन्त के शरीर हांड़-मांस चमड़े के हैं। और जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर में है वैसा ही चांडाल आदि के। पुनः मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ?

उत्तर :– दोष है। क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने- पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोष रहित रज-वीर्य उत्पन्न होता है, वैसा चांडाल और चंडाली के शरीर में नहीं। क्योंकि चांडाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणदि वर्णों का नहीं। इसलिए ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चंडालादि नीच भंगी, चमार आदि का खाना न खाना। भला जब कोई तुमसे पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्र वधु का है, वैसा ही अपनी स्त्री का भी है। तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी स्वस्त्री के समान वर्तोगे ? तब तुमको संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा। जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है। तो क्या मलादि भी खाओगे ? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है?

इतना कहकर ही ये पुस्तक शान्त हो गयी हो ऐसा भी नहीं है। वरन् ऊँच-नीच के भेद में महर्षि दयानन्द ने वीर्य का भी ऊँच-नीच का वर्णन किया है। उन्होने ब्राह्मण के वीर्य को सम्मानित किया है। अर्थात् सभी वर्ण की स्त्रियों को ब्राह्मणों के वीर्य से सन्तान उत्पन्न करने का महान उपदेश भी दिया है:-

सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लासः प्रश्न संख्या—१४१

प्रश्नः— नियोग अपने ही वर्ण में होना चाहिए व अन्य वर्णों के साथ भी ?

उत्तरः— अपने वर्ण में वा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष के साथ अर्थात् वैश्य स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ क्षत्रिय, क्षत्रिय के साथ और ब्राह्मण के साथ, ब्राह्मणी, ब्राह्मण के साथ नियोग कर सकती है। इसका तात्पर्य है, कि वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का चाहिये, अपने से नीचे के वर्ण का नहीं। स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है। कि धर्म अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह व नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना।

जांत पांत की संकीर्णता का इतना गन्दा और घिनौना रूप किसी भी सम्प्रदाय में देखने में नहीं आता है। महर्षि दयानन्द ने अपनी पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में औरत को मिट्टी का खेत माना है। इसी लिए खेत में उत्तम वर्ण का बीज पड़ना चाहिए। इसको उन्होंने सृष्टि का नियम बताया है। भारत के शेष सभी सम्प्रदायों ने तथा सनातन धर्म ने नारी को नवदुर्गा और पतिव्रता माना है, महर्षि दयानन्द मिडिल-ईष्ट की कबाइली विचार धारा से पूरी तरह जुड़े रहे हैं। इसीलिए वह नारी के चरित्र की अवहेलना करके उसे पर-पुरुष से नियोग की बात को और नाजायज सन्तान को सृष्टि का प्रयोजन बता रहे हैं।

ब्राह्मण के वीर्य में वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र के वीर्य में क्या भेद है ? यह जब मैंने डाक्टरों से पूछा तो उनको भी आश्चर्य हुआ कि "वीर्य एक्सपर्ट" महर्षि और उनका आर्य समाज किस आधार पर वीर्य का वर्गीकरण करता है ? उनके मत से इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। यहां ये भी नहीं भूलना चाहिए कि महर्षि दयानन्द से लेकर आज तक किसी भी आर्यसमाजी वीर्य शोध-संस्थान की स्थापना नहीं हुई है।

इस वीर्य वर्गीकरण में ब्राह्मण वर्ण महान है। उसके उपरान्त क्षत्रिय वर्ण का वीर्य उत्तम माना गया है। तृतीय स्थान पर वैश्य वर्ण का वीर्य माना गया है। शूद्र वर्ण के वीर्य

को लगता है आर्य समाज वीर्य ही नहीं मानता। इसलिए सभी नारियों को उपदेश है, कि वे जाकर सभी ब्राह्मण से नियोग करवायें।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस पुस्तक के विदेशों में भी नाना भाषाओं में संस्करण प्रकाशित हुए हैं। जिसके कारण लोग भारत की नारी को एक व्यभिचारिणी और वैश्या के रुप में ही सारे विश्व के लोग जानते हैं। ये महान देन महर्षि दयानन्द और आर्य-समाज की ही है।

"देवर" शब्द की अति प्राचीन परिभाषा भारत की संस्कृति में देव-रक्षित के रूप में हुई है कि नारी जिस प्रकार ईश्वर के पास सुरक्षित है उसी प्रकार जिस व्यक्ति के पास सुरक्षित है उसे देवर कहते हैं। "सत्यार्थ प्रकाश" ने इस शब्द की भी परिभाषा को बदल दिया और देवर को द्विवर बना दिया। उसकी व्याख्या निम्न है :-

सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लासः प्रश्न संख्या-१४५

'देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्चते।"

देवर उसको कहते हैं जो कि विधवा का दूसरा पति होता है चाहे छोटा भाई या बड़ा भाई अथवा अपने वर्ण वा अपने से उतम वर्ण वाला हो, नियोग करे उसी का नाम देवर है।

ये व्याख्या जो उन्होंने देवर शब्द की करी है। दूसरी सदी के कबाइली मुसलमान की व्याख्या है। दूसरी सदी के कबाइली तंत्र के मुताबिक जब भी कोई कबाइली युद्ध में मारा जाता था। तो नियम के मुताबिक, उसके हरम को उसके छोटे भाई को दे देते, अथवा उसका कोई बड़ा भाई होता था तो उसको दे देते थे। यदि वह भी नहीं तो उसका बड़ा बाप, मामा, चाचा हो उसको दे दिया जाय। यदि उसके कुल में कोई भी न हो तो उस हरम को जो कबीले का बड़ा अर्थात् सर्वोपरि होता है उसको सौंप दिया जाता था।

ये बड़ी ही विलक्षण बात है, कि यह सारी पुस्तक और समाज दूसरी सदी के कबाइली तंत्र के साथ जुड़ा हुआ है। यहाँ तक की एक स्त्री ग्यारह पुरुषों तक नियोग करने का अधिकार है। इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए महर्षि दयानन्द ने वेद जैसे पवित्र ग्रन्थ को भी उदाहरण में लिया है। और उसकी मन चाही व्याख्या की है।

यथा :-

सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लासः प्रश्न संख्या-१३३

"इमां त्वमिन्द्रः मीढ़वः सुपुत्रां सुभगाम् कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥"

हे (मीढवः इंद्र) वीर्य सिंचन में समर्थ ऐश्वर्य युक्त पुरुष! तू इस विवाहित स्त्री व विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठ और सौभाग्य युक्त कर। इस विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान। हे स्त्री तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दस सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पति को समझ।

अब हम इसका अर्थ स्पष्ट करते हैं :-

(इमां) अर्थात् इस प्रकार, (त्वमिन्द्र) इस प्रकार तुम, हे इन्द्र! महान! यज्ञ प्रदीप्त! (मीढ़वः) सबके पूज्य पिता, सबको उत्पन्न करने वाले (सुपुत्रां) अपने पुत्रों को (सुभगां) सौभाग्य से संयुक्त (कृणु) करो। (दशास्यां) दसों इन्द्रियों को (पुत्रानाधेहि) हम पुत्रों को जो आपने प्रदान की हैं। (पतिमकादशं) उनका ग्यारहवां अधिपति जो मन प्रदान किया है। (कृधि) कर्म को धारण करने वाली जो बुद्धि आपने प्रदान की है अर्थात् हे पिता! हम पुत्रों को सौभाग्य से संयुक्त करो। अपनी ज्योतियों से युक्त करें। हमारी दशों इन्द्रियों को तथा ग्यारहवें अधिपति मन को तथा बुद्धि को पवित्र करो जिससे मन से, बुद्धि से तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों से हम आप ही का अनुसरण कर सकें। आप की ही राह चल सकें।

ग्यारह पति के अतिरिक्त अथवा पति के सहित कोई भी स्त्री ग्यारह पुरुषों तक का नियोग कर सकती है। इसको पुनः प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने **चतुर्थ समुल्लासः प्रश्न संख्या-१४८** में पुनः इसी मन्त्र का हवाला देकर कहा है। मन्त्र से ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है। वैसे पुरुष भी ग्यारह स्त्रियों तक नियोग कर सकता है। इस प्रकार छुआछूत और जांत-पांत की सबसे गन्दी किताब महर्षि दयानन्द की सत्यार्थ प्रकाश है, कि जहाँ ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरे वर्ण की औरत को चाहिए कि ग्यारह ब्राह्मणों से नियोग कराये। ऐसा सुन्दर उपदेश इस पुस्तक में ब्रह्म भक्त महर्षि दयानन्द ने दिया है।

दूसरा सम्प्रदाय शंकराचार्य सम्प्रदाय है जिसने छुआछूत को और जांत-पांत को अपने धर्म का आधार माना है। इसी की इन मान्यताओं के कारण सारे भारत में छुआछूत और

भेदभाव जैसी गन्दगी व्यवस्थाओं ने जन्म लिया। इस सम्प्रदाय द्वारा प्रकट पुस्तकों में इस प्रकार की दुर्गन्ध व्यापक रूप से देखने में आयी है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात इस सम्प्रदाय में यह है, कि इस सप्रदाय के प्रवर्तक आद्य जगत गुरु शंकराचार्य ने एक चाण्डाल को गुरु बनाया था, और उसकी पूजा की थी। जबकि यह सम्प्रदाय छुआछूत को ही महत्व देता है।

वैष्णव सम्प्रदायों में भी बहुतायत से इस भेदभाव का चलन देखने में आया है परन्तु मूल सनातन धर्म के ग्रन्थों में छुआछूत का, अथवा इस आधुनिक वर्ण-व्यवस्था का कहीं पर भी स्पर्श भी नहीं मिलता। लगता है गुलामी के अन्तरालों में जब गुरुकुल, तपस्वी और ऋषि तथा विश्वविद्यालय विदेशियों द्वारा ध्वस्त कर दिये गये। प्रबुद्ध समाज सामूहिक हत्याओं का शिकार बना। दासता के अन्तरालों में भारत और भारती रखे गये। उसी समय इन अन्ध मान्यताओं ने उन कटी हुई लाशों में जन्म लिया और सडान्ध ने धर्म का स्वरुप ग्रहण किया। भारत की संस्कृति में, आदि ग्रन्थों में, चारों वर्ण हम एक ही व्यक्ति में देखते रहे हैं। जैसा कि ऊपर भी मैं स्पष्ट कर चुका हूँ।

आज भी यदि आप विचार करें तो हर व्यक्ति के शरीर में चारों वर्ण व्याप्त हैं। प्रातः काल जब आप उठते हैं। शौचादि क्रिया को जाते हैं, तब आप शूद्र होते हैं। शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर जब आप पूजा-पाठ, ध्यान आदि में ब्रह्मलीन होते हैं। तब आप ब्राह्मण होते हैं। जब आप गृहस्थ धर्म को धारण करते हैं, तब गृहस्थी के लिए प्रयत्नशील होते हैं तब आप क्षत्रिय होते हैं। जब आप नौकरी, व्यवसाय आदि में धर्नाजन हेतु जाते हैं तो आप वैश्य हो जाते हैं। इस प्रकार चारों वर्ण आपके जीवन में प्रतिदिन आते हैं। इसी लिए वेद ने भी माना है :–

"जन्मना जायते शूद्रा!" आदि कालीन उपरोक्त व्याख्या ही मिलती है।

भारत और भारती में आदिकाल से भेदभाव की व्यवस्थाओं को स्थान नहीं दिया गया। भारत का सन्त विश्व के सन्त से अलग ही एक अनूठी विचार धारा का रहा है। जब भी भारत के सन्त से पूछा किसी ने :–

" रे सन्यासी बता हमारे ईश्वर कहाँ रहते हैं ?"

"नारायण आत्मा होकर घट-घट वासी हैं, तुम्हारे भीतर वास करते हैं।"

यही सहज उत्तर भारत भक्त को मिला। जब ईश्वर तुम्हारे घट में हैं; तो तुम छोटे किससे हो, और तुम बड़े भी किससे हो। हम सब समान हैं। यही सुन्दर समता की लहरों ने इस देश को नाम, धर्म, संस्कृति और समाज दिया। ये धारा, ये ज्ञान, ज्ञान की देवी सरस्वती की धारा कहलाई।

जिस देश का नाम आज भारतवर्ष है, उसका आदिकालीन नाम "भरतखण्ड" सम्पूर्ण वेदों में आया है। आज भी पूजा के समय आप संकल्प लेते हैं तो इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं। "जम्बू द्वीपे भरत खण्डे।" जम्बू द्वीप एशिया महाद्वीप का नाम है। जिसका भरत-खण्ड आज का "भारतवर्ष" है। इस देश का नाम "भरत-खण्ड" परमेश्वर के नामांतर ही पड़ा। "भरत" शब्द का अर्थ वेदों में सबका भरण-पोषण करने वाले परमेश्वर को लेकर है और हम सब उसी भरत के पुत्र हैं। इसलिए भारत हैं। "भारत" शब्द का अर्थ है, भरत के पुत्र ईश्वर के बेटे, मसीहा, अवतार। भारत के सन्त ने हम सबको ईश्वर का बेटा, मसीहा और अवतार कहा है। चाहे हरिजन हो, ब्राह्मण हो, स्त्री हो अथवा पुरुष, हम सब एक ही पिता के पुत्र हैं इसलिए हम सब भारत हैं। भारत के सन्त ने स्त्री-पुरुष में भी भेद नहीं किया है। यदि नर रुप में परमेश्वर की कल्पना की तो नारी को भी नव-दुर्गा का स्थान देकर समभाव बरता। इससे भी स्पष्ट है कि छुआछूत, भेदभाव की गन्दगी गुलामी के ही अन्तरालों में ही उत्पन्न हुई। पूर्वकालीन धर्म में इसका कोई स्थान नहीं रहा है।

नये उभरते सम्प्रदायों ने भी मनोवैज्ञानिक ढंग से पहले छुआ-छूत को उभाड़ा और फिर इसको मिटाने के ठेकेदार बनकर लोगों को समूहों में बांटने लगे। दलित लोगों और अछूतों को ठेकेदारी का स्वांग भी भरने लगे। जैसा कि आजादी के इन चालीस वर्षों में आर्य समाज और राजनीतिक नेता करते रहे हैं, तथा कर रहे हैं। भेदभाव मिटाओ के नाम पर इस देश का साम्प्रदायिक वर्गीकरण। जांत-पांत छुआ-छूत मिटाओ के नाम पर जात-पात के सम्बन्धित वर्गीकरण और जांत-पांत को ही सब कुछ मानकर किये गये क्रिया-कलाप आज भारत के लिए एक अन्धा कुआं बन गये हैं। जहाँ सारे राष्ट्र को एक अन्धी मौत की गोद में सोना है।

यदि हम चाहते हैं कि छुआ-छूत और हरिजन, सवर्ण, का भेद मिट जाये तो हमारा यह प्रयास होना चाहिए था कि भविष्य में आने वाली पीढ़ी जाने ही नहीं कि यहाँ कभी भेद-भाव, छुआछूत जैसा पाप अन्याय, अत्याचार भी था। परन्तु हमने तो हरिजन, सवर्ण के

भेद-भाव को संवैधानिक संरक्षण देकर अमरता प्रदान कर दी। धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर सारा देश जाति युद्ध और महाविनाशक हिंसा की ओर बढ़ रहा है। जो भारतीय संविधान की महान देन है। चालीस वर्ष पूर्व का प्रेम, सौहार्द, सह अस्तित्व का भाव तेजी से मिटता जा रहा है। अब तो स्पष्ट लगने लगा है कि अन्तिम विनाश को हमारे राष्ट्रीय नेता बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से, संविधान की छत्र-छाया में हमें तेजी से भगाये लिये जा रहे हैं। साथ में जात-पांत भेद-भाव मिटाने के नारे भी लगाते जा रहे हैं।

हमारे महान नेताओं से जनता पूछती न हो, ऐसा नहीं है। परन्तु उत्तर के स्थान पर एक भड़कीली स्पीच और लकीर पीटने के अलावा कुछ नहीं मिलता।

मैं आपसे पूछना चाहूंगा कि जांति-पांति के घृणित हथकण्डे बाजी के बिना क्या हरिजन तथा पिछड़े वर्ग का उद्धार सम्भव नहीं था? क्या आर्थिक स्थिति को इकाई मानकर यही कार्य नहीं किये जा सकते थे? तब बहुसंख्यकों को हरिजन सवर्ण में बांटने का घृणित षडयन्त्र क्यों किया गया? यह अपार्थाइड क्यों? ऐसी धोखा-धड़ी भारत के अतिरिक्त किसी भी देश में नहीं है। मजा यह है कि हरिजन सवर्ण की धोखा-धड़ी में अधिकता से सम्पन्न हरिजन को ही लाभ मिल रहा है। गरीब हरिजन पहले से कहीं अधिक दुखी, तिरस्कृत और सवर्ण घृणा का पात्र बनता जा रहा है। जातिगत वैमनस्य, संदेह और घृणा को बड़े ही मनोवैज्ञानिक रुप से सत्ताधारियो द्वारा, क्या भड़काया नहीं जा रहा है? केवल वोटों की राजनीति के लिए? अथवा क्यों?

डेमोक्रेटिक अमेरिका में जांति-पांति पर नहीं वरन् आर्थिक स्थिति पर मदद करने का विधान है। उसमें नागरिक अथवा विदेशी (ग्रीनकार्ड होल्डर)का भी भेद नहीं होता। अमेरिका सरकार मानवता के नाम पर अमेरिका में रह रहे सभी लोगों की आर्थिक संकट में मद्द करती है। मद्द जरूरत-मन्द को मिलनी चाहिए। मानवता के नाम पर। इसमें जाति-पांति और राष्ट्रीयता को भी स्थान नहीं मिलना चाहिए। यह मान्यता अमेरिकी सरकार और संविधान की आज भी है। विश्व में सभी उन्नत तथा उन्नतिशील देशों ने लगभग इसी मानवीय सिद्धान्त को ही आधार माना। हमारे नेता बड़े मानवतावादी हैं।

हमारा नारा है :—

जात पर न पांत पर, इन्दिरा जी की बात पर,
मोहर लगेगी हाथ पर।

जात पर डिग्री, जात पर नौकरी, जात पर आर्थिक सहायता, जात पर संरक्षण, जात पर वोटों की राजनीति, और फैलता जाति-पाँति का भयंकर विष और लुटती मानवता।

मैं पूछना चाहूँगा कि आर्थिक स्थिति को सहायता की इकाई मानकर क्या हरिजन व पिछड़े वर्ग की सहायता नहीं हो सकती थी ? फिर उकसाने, भड़काने और वैमनस्य पैदा करने वाली यह घिनौनी हथकण्डे बाजी क्यों? सच पूछा जाय तो वर्तमान स्थिति में अधिकांश लाभ सत्ता सम्पन्न अमीर हरिजन को मिल रहा है। गरीब हरिजन तो जहां का तहां है। यही आर्थिक इकाई पर होता तो पहली बार सड़क पर झाड़ू लगाने वाले का लड़का अपने स्वप्न साकार करने की स्थिति को प्राप्त होता। सवर्ण, हरिजन वर्गीकरण से सारा देश विषाक्त हो रहा है, लाभ केवल राजनीतिक अवसरवाद और उससे चिपके समृद्ध वर्ग को मिल रहा है। क्या यह राष्ट्र के साथ धोखा-धड़ी नहीं है।

दूसरा प्रश्न मेरा है—जातिवाद बटी (न कि योग्यता पर) डिग्रियां क्या कानून की दृष्टि में अपराध नहीं हैं ? अस्पतालों में मरते भोले बच्चे, जो इन्हीं डिग्रियों का शिकार हैं, इन हत्याओं का दोषी कौन ? उन्हें दण्ड मिलना चाहिए अथवा भारत रत्न ? प्राकृतिक सहज न्याय की अवहेलना एक घृणित अपराध है जो अक्षम्य है।

निस्संदेह जाति पांति, छुआ-छूत किसी भी सभ्य समाज के लिए कलंक है। इनको यथाशीघ्र मिटाना ही राष्ट्र हित है। परन्तु हम तो इसे फैला ही नहीं रहे हैं वरन् अधिक भयावह और विषाक्त बना रहे हैं।

टेलीविजन पर प्राय: राष्ट्रीय एकत्व के लिये सरकारी तन्त्र गाता है, और गवाता है:—

"हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा"
"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना"

इसके आगे एक नई पंक्ति का सुझाव दे रहा हूँ। जिससे गीत अधिक व्यवहारिक हो:—

"भेद-भाव कराता यह संविधां हमारा।
सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा॥"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की भावना थी कि सारा देश भेद-भाव से रहित होकर एकत्व की भावना से जिये। सभी को समान नागरिकता के अधिकार हों। सभी के साथ समान न्याय हो। गांधी से गान्धी तक, जाने हम कहां आ गये हैं ?

सारे विश्व में सभी सम्प्रदायों के, सभी वर्णों के लोग सभी देशों में रहते हैं। आश्चर्य है कि किसी भी देश में वर्गीकरण की गन्दगी नहीं है। सभी को समान नागरिक माना गया है। सहायता देने की जितनी व्यवस्थाएं हैं वे मानवता के नाम पर हैं इसमें राष्ट्रीयता भी आड़े नहीं आती। भारतवर्ष ही इकलौता अभिशप्त राष्ट्र है जहाँ सद्भाव और समन्वय के नाम पर राष्ट्रीय दल सुनियोजित ढंग से दुर्गन्ध फैला रहे हैं।

जहाँ-जहाँ सत्तारूढ़ दल का राज्य है वहीं पर ही जाति-पांति और साम्प्रदायिक दंगे अधिक होते हैं। ऐसा क्यों ?

सम्भवतः हमारे राष्ट्रीय सत्तारूढ़ दल ने छुआ-छूत और साम्प्रदायिक वर्गीकरण को चुनावी हथकण्डा बना रखा है। जो भी समस्या चुनाव के स्टन्ड के रूप में आती है। वह बड़ी ही भयावह होती है। ये एक अटल मनोवैज्ञानिक सत्य है। कम्युनिस्ट दल गरीबी और अमीरी के भेद-भाव को चुनावी हथकण्डे के रुप में प्रयोग करते हैं इसलिए जहाँ-जहाँ कम्युनिस्ट सरकारें हैं, वहाँ-वहाँ वर्ग संघर्ष अत्यधिक है। जहाँ-जहाँ कांग्रेस सरकारें हैं वहाँ पर साम्प्रदायिक तनाव और जात-पांत की घुटन व्यापक रूप से देखने में आती है। जहाँ की राज्य सरकारें इन दोनों दलों से अलग हैं और क्षेत्रीयता के चुनावी हथकण्डे पर चुनाव लड़ती हैं, वहाँ पर क्षेत्रीयता का भाव भयंकर रुप में उभरकर सामने आ रहा है, यदि इस सत्य को हम सामने रखें तो हम पूरी ईमानदारी के साथ कह सकते हैं कि पिछले चालीस साल में साम्प्रदायिकता और जातियता को फैलाने में सत्तारूढ़ दल का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

सनातन धर्म के प्रथम पुरुष के रूप में महर्षि वेदव्यास का नाम आता है। चारों वेदों के संकलन कर्ता, महाभारत और भागवत जैसे महान ग्रन्थों के रचयिता, १८ पुराण, शास्त्र, ब्रह्मसूत्र, आदि जिनकी अनूठी देन है। वे वेदव्यास अपने जन्म की कथा में मछुवारे की बेटी सत्यवती के गर्भ से जन्मते हैं, जो हरिजन है तथा उनके पिता महर्षि पराशर हैं जो ब्राह्मण हैं। आदि पुरुष के जन्म की कथा से आप स्वयं अर्थ लगा सकते हैं कि छुआ-छूत और जात-पांत को सनातन धर्म में कहीं स्थान नहीं रहा होगा।

पुर्नविवाह को लेकर भी हमारे नेता सनातन धर्म पर कीचड़ उछालते हैं, जबकि वेद-व्यास की माँ सत्यवती ने ही पुनः विवाह किया था। उसका दूसरा विवाह महाराज शान्तनु से हुआ था।

★XX★XX★XX★